आंखें - प्रकृति की अनमोल देन

आदित्य मनयां जैन

आँखें मन का दर्पण होती है। शरीर के सभी अंगों में आंखें सर्वश्रेष्ठ अंग है। मन में, मस्तिष्क में जो भी विचार आता है आंखें तत्क्षण ही उसे प्रकट कर देती हैं। आंखों की इस त्वरित प्रतिक्रिया को मनुष्य चाहकर भी उसे छुपा नहीं सकता। शायर ने इसी वजह से कहा है- **"होता है इन्हीं से इस दिल का राज़ फ़ाश, आंखें जुबां नहीं है मगर बेजुबां नहीं।"**

ये दो आंखे हमारे लिये कुदरत का नायाब तोहफा है। अंग्रेजी में भी कहा गया है **You can't compare this "PAIR" with any thing in the world.** आंखे खोलते ही हमें रंग-बिरंगी दुनिया के दर्शन होते हैं। सौंदर्य चाहे व्यक्ति का हो या शरीर का हम उसे आंखों के माध्यम से ही देख पाते हैं। निमन्त्रण देती हिमगिरि की श्वेत, धवल ऊंची-ऊंची चोटियां, मरकत मणि (पन्ना) की भांति विस्तृत हरे-भरे मैदान, कल-कल करते दुग्ध फेन के समान झरते झरने, इन्द्रधनुष के लुभावने रंग, तरंगों से भरे नीले सागर का अपार विस्तार, ऊषा और सांझ की लाली से अनुरंजित दिग-दिगन्त तक फैला आकाश, बगीचों में मुस्कुराते हजार रंग के फूल, इनके आनंद का अनुभव करने के लिए हमें आंखों, केवल आंखों की जरूरत होती है। "दीदावर" आंख वालों की प्रतीक्षा में "नर्गिस" को हजारों साल अपनी बेनूरी पे रोना पड़ता है।

बहरहाल दुनिया के सब लोग अंधे और आंख वाले एक स्वर से इस बात पर सहमत होंगे कि "आंख हैं तो जहान है" एक साहब को तो आंख के सिवा कुछ दिखता ही नहीं :

"तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है,
ये उठें सुबह चले, ये झुकें शाम ढले.
मेरा जीना मेरा मरना इन्हीं आंखों के तले"।

बलिहारी है इन आंखों की। साहित्य और समाज में जितना और जितनी विविधता से "आंखों" का वर्णन, विवरण मिलता है उतना संभवतः किसी और अंग का नहीं। साहित्य के "नवरसों" की अभिव्यक्ति केवल आंखों के माध्यम से हो जाती है। श्रृंगार रस और शायरी की तो जान हैं आंखें कवियों और शायरों ने इन्हें क्या-क्या नहीं कहा। श्रृंगार के रस सिद्ध कवि बिहारी ने तो आंखों के सफेद, काले और लालिमा युक्त भागों को बाकायदा अमृत, विष और शराब घोषित कर दिया है और उनका असर भी बता दिया है-

"अमिय हलाहल मद भर, श्वेत श्याम रतनार,
जियत-मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार"।

आंखों की उपमा शराब के प्याले से की जाती है। इसके प्रमाण में हजारों शेर और दोहे हैं पर हमारा शायर इससे सहमत नहीं-

"हजार जाम तसद्दुक हजार पैमाने।
तेरी नजर की लताफ़त शराब क्या जाने।।

सही भी है "आंख लग जाये" तो "आंख नहीं लगती" जीना दूभर हो जाता है और किसी 'मृगनयनी' को हार कर कहना पड़ता है- मार कटारी मार जाना पै अंखियां किसी से मिलाना न"। एक और सुनयना आंखों को कोस रही है -"बुरा हो इन बैरिन अंखियों का कर बैठी नादानी-पहले आग लगा दी दिल में अब बरसाए पानी"। आंखे चार करने के बाद अब "आंखें लाल-पीली" करने से क्या फायदा पहले तो आंख बचाकर" "तिरछी आंखों" से "आंखों के तीर चला दिये" अब चाहे "आंखों से मोती बरसाए" या उनकी प्रतीक्षा में "आंखे बिछाए" अब "आंखें पथरा" भी जाए तो प्रियतम के "आंखें फेर लेने", "तोता चश्मी" का दोष किसको दें? इन निगोड़ी आंखों को जिन्होंने पहले उसे 'आंखों की पलकों' में छुपा रखा था।

प्यार में तो आंखों से हजार काम लिए जाते हैं। पहली नजर में महिला अपनी आंखों की पुतलियां फैला देती है और समझदार पुरूष प्रक्रिया को डिकोड कर लेता है। शायद इसीलिए बाग-बगीचों के झुरमुट में अमराइयों के प्रणय कक्ष की मद्धिम-मद्धिम रोशनियों में आंखों की पुतलियां बरबस फैल जाती हैं। तभी तो अपने प्रिय की उन झील=सी आंखों के विस्तार में और उनकी गहराई में आप अनजाने डूबते चले जाते हैं।

इन आंखों की महिमा आंखे ही जानें। सख्त और सर्द होकर देख लें तो मृत्यु का काम करती हैं और जरा सा मुस्कुरा दें तो मुर्दे में जान पड़ जाती है। बकौल किसी शायर-

"ऊपर उठें तो दुआ होती है, नीचे झुक जाएं तो हया होती है।
तिरछी हो गर तो अदा होती है, और हो जाएं जो सीधी तो कज़ा होती है।"

यह आंखों का ही कमाल है कि हजारों की भीड़ हों चाहे चारों ओर सख्त पहरा हो वे चोट करने से नहीं चूकती-

"पलकों को पर्दा पड़ो और घूंघट की ओट
काज़र का घेरा डरो फिर भी कर गये चोट।
सही न जाए रे, नैन बान की पीर"

'नैन बान' से याद आई किसी भुक्तभोगी की पीड़ा जिसका हृदय नायिका के नैन बाणों से छलनी हो गया है-

'गड़ गये छाती फोड़ नैना बान गोरी के।'

देखा आपने इन आंखों का कमाल ये कब क्या रूप धर लें, भलाई इसी में है कि ऐसी नजरों से बचकर रहें-

है इक निगाहे नाज़ लेकिन वक्त-वक्त पर,
कभी नश्तर, कभी नावक, कभी तलवार होती है।